तात्कालिकता के पारः **21** वीं सदी में भारत और अमरीका

Beyond Immediacy: India and America in the Twenty-First Century

रुद्र चौधुरी

Rudra Chaudhuri
June 2, 2014

नरेंद्र मोदी को मिले भारी और अभूतपूर्व जनादेश ने सभी विशेषज्ञों और प्रवक्ताओं को यह सोचने के लिए विवश कर दिया है कि भारत का अनुग्रह पाने के लिए अमरीका और क्या-क्या कर सकता है. जहाँ कुछ लोग यह मानते हैं कि ओबामा प्रशासन को पहले से ही मोदी के अनुरूप आवश्यक सुधार कर लेने चाहिए अर्थात् ''मोदीकरण'' (मॉडिफ़ाई) कर लेना चाहिए और कुछ लोग मानते हैं कि खेल के नियमों को बदल लेना चाहिए और ''भारत के साथ नये संबंधों'' की शुरुआत करनी चाहिए. अधिकतर उदाहरणों को सामने रखकर यही बात समझ में आती है कि हमें अपना ध्यान निकट भविष्य पर केंद्रित करना चाहिए और यह बात तर्कसंगत भी है. अधिकांश प्रवक्ता मोदी के इस नारे पर तो मुग्ध ही हो गये हैं, ''अच्छे दिन आने वाले हैं ''. नये प्रधान मंत्री का आर्थिक और राजकोषीय एजेंडा अधिकांश सरकारों की मुख्य प्राथमिकता होती है और खास तौर पर अमरीका की तो यही प्राथमिकता है, लेकिन अमरीका ने मोदी पर अमरीका आने की ही पाबंदी लगा दी थी.

भारत में राजनैतिक संक्रमण की वर्तमान स्थिति हमें ऐसे सवाल पूछने का अवसर प्रदान करती है जो तात्कालिक हितों की अनदेखी करते हों. इसका यह मतलब नहीं है कि मोदी पर लगी पाबंदी जैसे संवेदनशील विषय की उपेक्षा करने की कोशिश की जाए. वास्तव में यह बात बहुत महत्वपूर्ण नहीं है. जैसा कि राजनयिक और राजनीतिज्ञ अच्छी तरह जानते ही हैं कि व्यक्तिगत आक्रोश का राज्यों के परस्पर संबंधों पर बहुत असर पड़ता है. पदधारियों का विश्वास ही कभी-कभी प्रगति का मूल आधार होता है जिसे दूसरे लोग नहीं समझ सकते. यह बात 2005 और 2008 के बीच राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू बुश और प्रधान मंत्री मनमोहन सिंह द्वारा हस्ताक्षरित महत्वपूर्ण परमाणु करार से समझी जा सकती है. फिर भी इस बात पर ज़रूरत से अधिक ध्यान देने की ज़रूरत नहीं है कि ओबामा का व्हाइट हाउस मोदी के नेतृत्व में भारत के प्रधानमंत्री कार्यालय तक अपनी पहुँच बनाने के लिए क्या करेगा. इससे अधिक ज़रूरी यह देखना होगा कि अधिक सामान्य अर्थ में विश्व राजनीति पर उनके महत्वपूर्ण संबंधों का क्या प्रभाव पड़ेगा. इस बात में कोई संदेह नहीं है कि भारत-अमरीकी संबंध सुदृढ़ होंगे. अंतर्राष्ट्रीय शांति के कारनेई ऐडोमैंट के वरिष्ठ सहायक ऐश्ले टैलिस की दृढ़ मान्यता है कि कोई भी काम ''आनंदरहित'' होते हुए भी उत्पादक तो होगा ही.

तात्कालिकता के मामलेः बौद्धिक संपदा के अधिकार (आईपीआर) और रक्षा

बौद्धिक संपदा से संबंधित मानकों को लेकर जो मतभेद सामने आये हैं, उन्हें सुलझाने की तत्काल ज़रूरत है. अमरीकी व्यापार प्रतिनिधि (यूएसटीआर) की वार्षिक ''306'' रिपोर्ट के अनुसार ''प्राथमिकता निगरानी सूची'' में सूचीबद्ध दस देशों में भारत का भी नाम है. यूएसटीआर के

अनुसार मुख्य मुद्दा यह है कि भारत का "आईपीआर कानूनी ढाँचा और प्रवर्तन प्रणाली बहुत कमज़ोर" है, जिसके कारण भारत के "नवोन्मेष के वातावरण" पर बहुत बुरा असर पड़ रहा है.

रिपोर्ट के अनुसार औषधि और कृषि-रसायन के क्षेत्रों में जहाँ पेटेंट्स को सुरक्षित रखना और उन्हें लागू करना बहुत मुश्किल होता है, स्थिति बहुत गंभीर है. अंदरूनी लोगों के अनुसार इसमें संदेह नहीं है कि अमरीकी फ़र्मास्युटिकल फ़र्मों का यह आक्रोश "306" रिपोर्ट में प्रकट हुआ है.

इसके जवाब में भाजपा का आक्रोश भी अफ़सोसजनक है. संयुक्त राष्ट्र में भारत के पूर्व राजदूत हरदीप पुरी, जो अब पार्टी के सदस्य हैं, ने अभियान के दौरान यह स्पष्ट रूप से कहा था कि यह रिपोर्ट "संविधान-बाह्य" है. यहाँ तक कि अलग से समीक्षा करने के विशेष प्रावधानों को भी पुरी ने "बकवास" कहा था. उनके अनुसार इसका समाधान केवल यही है कि इस मामले को विश्व व्यापार संगठन के विवाद सुलझाने वाली संस्था के पास ले जाया जाए. चूँकि यह रिपोर्ट अमरीका के नेतृत्व में और उसी की पहल पर तैयार की गई है, इसलिए व्यावहारिक तो यही है कि इसका समाधान द्विपक्षीय तौर पर भारत और अमरीका के बीच बातचीत करके किया जाए ताकि दोनों देशों के बीच दूरियाँ और मतभेद और न बढ़ें. जब इसका समाधान होने की पूरी संभावना है तो इस विवाद को तूल देने का कोई औचित्य नहीं है.

इसके अलावा कांग्रेस के नेतृत्व में भारत सरकार ने $10.4 बिलियन डॉलर मूल्य के 126 रैफ़ेल फ़ाइटर जैटों की खरीद का एक करार किया तो अमरीका-भारत के संबंधों में एक तथाकथित "गतिरोध " आ गया, जिस पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है. एफ़ श्रेणी के जेट की अमरीकी पेशकश को अंतिम शॉर्टलिस्ट में स्थान नहीं मिल पाया. विश्लेषकों का मानना है कि अमरीकी सेना ने शायद यह गलती की कि इस सौदे को पहले से ही पक्का मान लिया. वास्तव में कई लोगों के अनुसार रक्षा सौदों में अभी-भी स्थिति बहुत अनुकूल है. भारत ने अमरीकी एयरलिफ़्ट क्षमता और अन्य उपकरणों पर लगभग $10 बिलियन डॉलर की राशि खर्च की है. सन् 2015 में दोनों पक्ष भारत-अमरीकी रक्षा संबंधों के नये ढाँचे पर फिर से समझौता-वार्ता करेंगे. अमरीकी अपेक्षाओं का प्रबंधन इसलिए भी खास तौर पर महत्वपूर्ण है कि भारत के नये वित्त मंत्री ने रक्षा के मामले में 100 प्रतिशत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफ़डीआई) की इच्छा ज़ाहिर की है. अधिकांश खर्च इज़राइली और योरोपीय प्लेटफ़ॉर्मों पर ही होने की संभावना है. अमरीकी फ़र्मों और सरकार के स्तर पर संभावित असंतोष को कम करते हुए इन संबंधों के बीच लेन-देन का एक ऐसा स्वरूप उभरेगा जिसमें असंतोष के बावजूद सहजता रहेगी.

जिम्मेदारी के साथ तर्क देना

भाजपा सरकार को एक ऐसा अभूतपूर्व अवसर मिला है जैसा किसी अन्य दल को अब तक नहीं मिला था और इस अवसर का लाभ उठाते हुए वह वैश्विक हितों के मामलों पर विचार-विमर्श कर सकता है. यह श्रेय मनमोहन सिंह को जाता है कि आज परमाणु हथियारों से लैस भारत की हैसियत को लेकर और इस दिशा में की गई उसकी प्रगति को लेकर कोई सवाल नहीं उठाता. "परमाणु शक्ति से संबंधित भेदभाव" के दिन अब खत्म हो गये हैं. अब भारत खुलकर परमाणु प्रसरण से ऊपर उठकर मानवीय हस्तक्षेप जैसे वैश्विक मामलों पर विचार कर सकता है. सन् 2005 से जब संयुक्त राष्ट्र ने संरक्षण की ज़िम्मेदारी (आर 2 पी) नाम से प्रसिद्ध सिद्धांत को स्वीकार किया था तो भारतीय प्रतिनिधि न केवल इसे संदेह की नज़र से देखने लगे थे, बल्कि

उनका बुरी तरह से मोहभंग भी हो गया था. आखिरकार इस सिद्धांत (संयुक्त राष्ट्र के 2005 विश्व शिखर वार्ता परिणाम, संकल्प 138 और 139 के रूप में स्वीकृत) के पीछे मंशा यही थी कि अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को आवश्यकता पड़ने पर उन मामलों में सहायता करने, दबाव डालने और हस्तक्षेप करने के लिए भी सशक्त करना जहाँ कोई देश अपनी आबादी को संरक्षण प्रदान करने में विफल रहता है.

संयुक्त राष्ट्र के पूर्व भारतीय प्रतिनिधि के अनुसार भारत ने सख़्ती से हस्तक्षेप का विरोध किया था और यह विरोध वैसा ही निरर्थक था, जैसे नये सिरे से "बढ़ते साम्राज्यवाद को रोकने के लिए ट्रॉज़न घोड़े का प्रयोग करना." लीबिया के मामले में R2P के प्रयोग ने भारतीय राजनयज्ञों की आशंका की पुष्टि कर दी थी. R2P कोई अपने आपमें तैयारशुदा उत्पाद नहीं है. यह एक सिद्धांत है, जिसका उपयोग विकास के लिए किया जाना चाहिए. हमेशा के लिए असंतुष्ट रहने के बजाय आज भारत के पास विपुल अवसर हैं. ज़रूरत इस बात की है कि अब भारत आगे बढ़कर नेतृत्व सँभाले और अमरीका के समकक्ष खड़े होकर हर मामले में गुण-दोष के आधार पर तर्क करते हुए अपना निर्णय ले. इसे सुनिश्चित करने के लिए 28 मई के अपने भाषण में राष्ट्रपति ओबामा ने अपने वक्तव्य में यह स्पष्ट कर दिया था कि अमरीकी विदेश नीति की मुख्य प्राथमिकता यही होगी कि " अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शांति और व्यवस्था कायम और मज़बूत की जाए."

इस प्रकार के सशक्तीकरण अभियान से लीबिया में विफलता ही हाथ लगी. सीरिया में विद्रोहियों को सशस्त्र करके क्या कोई लाभ होगा या इससे स्थिरता आएगी, यह बात विवादास्पद है. ज़ाहिर है, हस्तक्षेप की नौबत कभी-भी आ सकती है. एक तरफ़ बैठे रहने के बजाय भारत को अवसर मिला है कि वह अमरीका को इस बात के लिए प्रेरित करे कि हस्तक्षेप करने के बजाय दो पूरी तरह से भिन्न उपायों के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करे. वस्तुतः हस्तक्षेप को लेकर की जाने वाली बहस भी आसान नहीं होगी और न ही इसे समस्या के समाधान का एकमात्र उपाय अनिवार्यतः माना जाना चाहिए. इस प्रकार के सुझावों को दोनों ही पक्षों द्वारा, भले ही वे समस्या में सीधे उलझे हुए पक्ष हों या फिर विशेषज्ञ हों, संदेह की दृष्टि से देखा जाएगा. फिर भी भारत और अमरीका के बीच ऐसे संबंध हैं, जो किन्हीं अन्य देशों के बीच नहीं हैं. इस संबंधों की सहायता से तात्कालिकता वाले मसलों में मतभेद होने के बावजूद अंतर्राष्ट्रीय हितों के मामलों में आवश्यक विश्वास बढ़ाया जा सकता है. इसके लिए आकांक्षा और दृष्टि की आवश्यकता होगी, लेकिन इसमें इतनी गुंजाइश है कि इससे भारत और अमरीका के बीच संवाद का रास्ता खुल सकता है ताकि 21 वीं सदी को अधिक रचनात्मक और संतुलित बनाया जा सके.

रुद्र चौधरी " *फोर्ज्ड इन क्राइसेज़ः इंडिया ऐंड युनाइटेड स्टेट्स सिन्स* 1947" *के लेखक हैं और किंग्स कॉलेज लंदन के युद्ध संबंधी अध्ययन विभाग में और इंडिया इंस्टीट्यूट में वरिष्ठ लैक्चरर हैं.*

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@gmail.com>